गुरुकुल में मेरी किशोरावस्था

विकास मिश्रा
शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आधुनिक समाज में माता-पिता अपने पुत्रों को वैदिक गुरुकुलों में भेजने में संकोच करते हैं। उनका मानना हैं कि शिक्षा-दीक्षा के लिए बच्चों को गुरुकुल क्यों भेजा जाए, उसकी आवश्यकता क्यों है? शिक्षा-दीक्षा के लिए वे अपने पाल्य को एक सामान्य विद्यालय में ही क्यों ना भेजे? गुरुकुल में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने की महत्ता क्या है? क्यों अन्य विद्यालयों से गुरुकुल में शिक्षा-दीक्षा की पद्धति को अधिक प्रभावी माना गया है, इसके बारे में मैं अपने इस लेख के माध्यम से बताने का प्रयास करूँगा साथ ही गुरुकुल में शिक्षा-दीक्षा के दौरान मेरा अनुभव कैसा रहा इसके बारे में भी चर्चा करूंगा।

मेरी शिक्षा-दीक्षा कक्षा पाँच से बारहवीं तक गुरुकुल में हुई। 2002 से 2010 तक गुरुकुल में रहकर मैंने वेदाध्ययन के साथ-साथ अन्य ग्रंथों का भी अध्ययन किया। इस अवधि में मुझे जिस प्रकार की शिक्षा मिली, उससे समाज के प्रति मेरा क्या दायित्व है? यह अनुभव करने और जानने का अवसर मिला।

आज के समय में कोई भी माता-पिता अपने पुत्रों (पुत्र मोह के कारण) को अपने से दूर नहीं रखना चाहते। विशेषकर तब जब उनका पुत्र मात्र आठ वर्ष का ही हो। मैं जब आठ वर्ष का हुआ तो मेरे माता-पिता भी मुझे गुरुकुल भेजने के पक्ष में नहीं थे, लेकिन कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थी कि उन्हें मुझे गुरुकुल भेजना पड़ा। घर का बड़ा लड़का होने के कारण भी वे मुझे शिक्षा-दीक्षा के लिए गुरुकुल नहीं भेजना चाहते थे। लेकिन इन सबके बावजूद मुझे गुरुकुल जाना पड़ा। जब 2002 में विश्व हिंदू परिषद के 'राष्ट्रीय अध्यक्ष' ब्रह्मलीन पूज्य अशोक सिंघल जी हमारे घर एक दिन के प्रवास पर आए, तो उस दौरान उन्होनें मेरे दादा जी (ब्रह्मलीन पूज्य बलीभद्रनाथ मिश्र) से अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए यह कहा कि मुझे आपका पौत्र वैदिक गुरुकुल की शिक्षा व वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए चाहिए। मेरे दादा जी जो कि उस वक्त राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़े हुए थे, उन्होने अपनी संस्कृति व धर्म के प्रति अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों को समझते हुए पूज्य अशोक सिंघल जी के इच्छा का मान रखते हुए हांमी भर दी। मेरे माता-पिता को जब इसकी सूचना मिली तो मेरे पिता जी ने कुछ संकोच करते हुए हांमी तो भर दी परंतु मेरी माता जी के लिए ये निर्णय लेना अत्यंत ही कठिन था। पहले तो उन्होंने साफ-साफ मना कर दिया लेकिन पिता ने उन्हें समझाते हुए कहा कि "समाज का माहौल इस वक्त जैसा है उससे हमारे पुत्र का जीवन तो जैसे-तैसे कट जाएगा लेकिन वह समाज के प्रति अपने कर्तव्यों और अपनी संस्कृति को किसी भी हाल में समझ नहीं सकेगा", इसलिए पुत्र को जाने दो ताकि वह गुरुकुल जाकर इन सारे ज्ञानों को अर्जित कर सके और अपने समाज और संस्कृति के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाहन कर सके। और साथ ही इस बात की भी सांत्वना दी कि हमारा पुत्र बीच-बीच में आकर हमसे मिलता रहेगा। पिता जी के समझाने पर ना चाहते हुए भी माता जी ने मुझे गुरुकुल भेजने के लिए अपनी हांमी भर दी। जब मुझसे इसकी चर्चा की गई तो मैं माता-पिता जी से दूर, अपने परिवार व मित्रों से दूर जाने की बात सुनकर मेरे मन के भीतर भय और मोह का जाग उठा और मन में तरह-तरह के प्रश्न उठने लगे, यथा- मैं साधु बन जाऊंगा, कथा करूँगा और घर कभी नहीं आ पाऊँगा, अपने मित्रो और भाई-बहनों से नहीं मिल सकूँगा आदि। लेकिन माता-पिता जी और दादा जी के बहुत समझाने पर कि गुरुकुल में शिक्षा अच्छी मिलती है और तुम्हें बहुत ही अच्छे संस्कारों के बारे में बताया जाएगा, ज्ञान और विज्ञान के बारे में बताया जाएगा आदि बातों को कहकर मुझे भी गुरुकुल जाने के लिए मना लिया गया।

सन् 2002 में अपने दादा जी के साथ कानपुर के गांधी नगर स्थित 'राम कृष्ण वेद विद्यालय' के नाम से गुरुकुल में गया। 'विश्व हिंदू परिषद' के सहयोग से कई वैदिक गुरुकुल संचालित किए जाते हैं जिनमें से यह भी एक था । विश्व हिंदू परिषद वैदिक **गुरुकुलों में पढ़ रहे छात्रों को निःशुल्क सेवा प्रदान करता है। इस संगठन में कार्य करने वाले व वैदिक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों को अपने ही परिवार का एक अंग मानते है। इसलिए इन गुरुकुलों में छात्रों से शिक्षा के लिए कोई भी वार्षिक शुल्क नहीं लिया जाता है।** गुरुकुल में प्रवेश के लिए बालक के आठ वर्ष की आयु और पाँचवीं कक्षा पास करने बाद ही प्रवेश दिया जाता है। गुरुकुल में प्रवेश से पहले छात्रों की परीक्षा ली जाती है और यह परीक्षा समाचार पत्र या कोई पुस्तक पढ़वाकर लिया जाता है। इस प्रकार की परीक्षा लेने का कारण यह था कि गुरुकुल के गुरु या आचार्य यह जान सकें कि बालक शब्दों व वाक्यों के उच्चारण में कहीं किसी प्रकार की त्रुटि तो नहीं कर रहा है, क्योंकि वैदिक ज्ञान के लिए बालक का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए। स्पष्ट उच्चारण का अभाव शिक्षा-दीक्षा में बाधक बनती है जो विद्यार्थियों के लिए अहितकर होता है। अतः मेरा भी प्रवेश इसी प्रकार हुआ और उच्चारण स्पष्ट होने के कारण प्रवेश हो गया।

गुरुकुल में मेरा पहला दिन सब चीजों से नया था। गुरुकुल का नियम था कि छात्रों को पैंट-शर्ट त्यागकर धोती-कुर्ता पहनवा दिया जाता और हाथों में श्रीमद्भागवत गीता दे दिया जाता है । मेरे साथ भी यही हुआ और मुझे भी धोती-कुर्ता पहनाकर हाथों में गीता दे दी गई । गुरुकुल परंपरा को अनुशासन के लिए ही जाना जाता है। गुरुकुल के नियम व अनुशासन अत्यंत कठोर हुआ करते हैं। जमीन पर गद्दा लगाकर सोना, मधु, मांस, गंध, रस, स्त्री, प्राणी-हिंसा आदि छात्रों के लिए वर्जित था और है। गुरुकुल की नियमित दिनचर्या में छात्रों को **ब्रह्म मुहूर्त (प्रातः 04:00 बजे) में उठना, प्रातः स्मरण, शौचादि से निवृत्त होकर, योग, त्रिकालिक संध्या-वंदन, हवन के लिए समीधा तोड़कर लाना,** गुरु के सानिध्य में बैठकर विद्याभास करना, मध्याह्न भोजनोपरांत कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् पुनः विद्याभ्यास करना, सायंकाल क्रीडा के लिए कुछ समय देना ताकि शारीरिक एवं मानसिक विकास हो सके, गौ सेवा, वृक्षों को लगाना व उनकी देखभाल करना और रात्रि भोजन के बाद विश्राम करना, पुनः नियमित रूप से वही नियम का पालन करना रहता है। कभी-कभी भोजन बनाने वाला जिसे 'भण्डारी' कहा जाता है अगर वह किसी कारणवश घर चला जाए तो गुरुकुल में रह रहे छात्रों की सूची तैयार करके भोजन बनाने की पारी लगाते, जिस समय मैं गुरुकुल में था उस समय करीब पचास छात्रों की संख्या रहती थी। अतः भोजन बनाने के लिए हर एक दिन एक पारी लगती जिनमें तीन सदस्य रहते थे । इस तीन सदस्यों में एक पुरातन छात्र, दूसरा मध्यकालीन छात्र और नए छात्र का एक समूह तैयार किया जाता, और एक-एक दिन के अंतराल पर भोजन बनाने की पारी लगती थी । भोजन बनाते समय तीनों सदस्यों में अगर किसी को भोजन बनाने के विधि की जानकारी नहीं होती तो गुरु भी हमारे साथ सहयोग करते। भोजन बनाने के साथ-साथ वहाँ की साफ-सफाई और बर्तनों को धुलकर उन्हें व्यवस्थित जगह पर रखा जाए इस बात पर भी ध्यान दिया जाता था।

पहला दिन गुरुकुल में मेरे लिए दुःख और पीड़ाओं से भी भरा हुआ था, माता-पिता की याद और उनके साथ खाना-पीना सब याद आ रहा था। उस समय मोबाइल नहीं हुआ करता था कि जिससे फोन लगाकर माता-पिता से बात हो जाए। जब दुःख और पीड़ाओं से घिरा हुआ रहता तो गुरु ही हमारे अभिभावक के रूप में हमें संभालते और कहा करते कि माता-पिता आएंगे लेकिन तब आप रोना और मायूस रहना बंदकर पढ़ाई पर ध्यान देंगे। इसी प्रकार थोड़ा हँसी-मजाक कर कुछ खाद्य पदार्थ देकर हमारे मन को परिवार आदि के मोह से मुक्त करके शिक्षा की ओर ध्यान केंद्रित करते। उदासी को दूर करने वाले कुछ मित्र भी हुआ करते थें जो हँसी मज़ाक कर ध्यान परिवार से हटाकर गुरुकुल के परिवेश में ढाल देते। इसी प्रकार किसी मित्र के माता-पिता जी को अपना अभिभावक समझना और रक्षा बंधन के पर्व पर किसी मित्र की बहन आए तो उसे अपनी बहन मानकर, उससे राखी बंधवाना और जो कुछ उपहार स्वरूप हो पाता हम उन्हें देते। यथा- कोई पाँच रुपए देता कोई दो रुपए देता, कोई टॉफी देता, जैसे जिसकी व्यवस्था होती उस रूप में उसे उपहार देकर एक भाई, बहन के प्रति अपना कर्तव्य समझता। गुरुकुल का जीवन ऐसा हो जाता कि वहाँ रहकर मित्रों और गुरुओं के साथ प्रेम और आत्मिक व्यवहार का संबंध बन जाता था।

करीब तीन महीने बाद मेरे साथ-साथ अन्य जितने भी विद्यार्थी कानपुर के निवासी थे, उन सभी को वहाँ से अयोध्या भेज दिया गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि उन छात्र का घर गुरुकुल के समीप होने के कारण उनके माता-पिता हर माह उनसे मिलने आते-जाते रहेंगे। जिससे एक छात्र नियमों व अनुशासन के पालन तथा अपने छात्र जीवन के कर्तव्य से विमुख हो सकता है ।

इस प्रकार तीन माह रहने के बाद बीस छात्रों को कानपुर से अयोध्या के कारसेवकपुरम में स्थित 'श्री राम वेद विद्यालय' जो कि विश्व हिंदू परिषद की वैदिक गुरुकुल की शाखाओं में से एक था' उसमें भेज दिया गया। हम सभी के लिए वह शहर नया-नया और लोग भी नए -नए थे। वहाँ के गुरु जी बहुत ही सख्त थे। गुरु छात्र के लिए जहाँ सख्त रहता था वहीं कहीं न कहीं छात्रों के प्रति प्रेम भी अधिक रहता है। अयोध्या आकर करीब एक वर्ष तक सभी नए छात्रों को गीता और स्तोत्र रत्नावली पढ़ायी जाती थी । स्तोत्र और गीता पढ़ाने का मुख्य कारण यह था कि छात्रों का उच्चारण स्पष्ट हो जाए और कंठस्थिकरण का अभ्यास हो जाए, क्योंकि वेद को पढ़ने के लिए छात्र का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए जिससे मंत्रों का उच्चारण शुद्ध हो सके और उसका दुष्प्रभाव न पड़े।

अनुशासनहीनता पर दंड देने का प्रावधान - मेरे लिए प्रारंभ में नियमों का पालन कर पाना बहुत ही कठिन कार्य था। नियम का पालन न करने पर गुरु जी द्वारा प्रताड़ित भी होना पड़ता था और दंड देने का जो प्रकार था वह बहुत ही कठोर था। यथा – एक समय का भोजन बंद कर देना, हाथ ऊपर करके खड़ा कर देना, एक टांग पर खड़ा कर देना, कभी-कभी ज्यादा उदंडता करने पर लकड़ी की छड़ी से भी मार पड़ना आदि ऐसे दंड हमें मिला करते थे। अतः कुछ माह इसी प्रकार चलने पर आगे चलकर गुरु जी से दंड न मिले इसलिए सही समय पर उठना और अपने क्रिया कर्मों कर वहाँ के नियमों का पालन करने लगा। गुरु जी का भय मेरे अंदर बहुत था जिसकी वजह से मुझ में कई ऐसी कमियाँ थी जो इस भय के कारण से दूर हो गई। और आज जब मैं इसका अनुभव ज्ञात करता हूँ तो यह समझ आता है कि गुरुकुल में अनुशासनहीनता करने पर गुरु जी द्वारा जो दंड दिया जाता, उसका कारण था पढ़ाई पर ध्यान लगाना, निरर्थक कार्यों में अपनी शक्ति क्षीण न

करना, अपनी ऊर्जा को सात्विक कार्यों में लगाना, शुद्ध आचरणों को आत्मसात कर एक सुयोग्य पुरुष बनना आदि था। अतः इन नियमों से मेरे भीतर जो परिवर्तन आया उससे मुझे स्वयं के प्रति कर्तव्यों का बोध तो हुआ साथ ही साथ सामाजिक दायित्वों का भी बोध हुआ। अतः इन्हीं कार्यों और अनुशासन से ही व्यक्ति में नागरिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने की क्षमता का विकास होता है।

वैदिक गुरुकुल में उपनयन संस्कार - वैदिक ज्ञान के लिए उपनयन संस्कार प्रमुख माना जाता है। यह संस्कार उस समय होता है, जब छात्र गुरु के समीप बैठकर वैदिक शिक्षा आरंभ करता है। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है- "पास ले जाना"। बालक गुरु से प्रार्थना करता है, "मैं ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने आपके पास आया हूँ, मुझे ब्रह्मचारी बनने दो," गुरु जी पूछते हैं "तुम किसके ब्रह्मचारी हो? बालक उत्तर देता, 'आपका'। अभिभावक छात्र को गुरु को समर्पित कर देता है। उपनयन संस्कार से पहले छात्र शूद्र कहलाता है तथा इस संस्कार के बाद द्विज कहलाता है। द्विज का अर्थ 'दो जन्मवाला' होता है। एक जन्म माता के गर्भ से और दूसरा गायत्री के गर्भ से। इसका तात्पर्य यह है कि माता के गर्भ से उत्पन्न होने के पश्चात् भी शिक्षा, ज्ञानोपार्जन आदि द्वारा मनुष्य में इतना परिवर्तन हो जाता है कि वह पूर्णतः दूसरा व्यक्ति बन जाता है। यही उसका जन्म है। अतः गुरु छात्र को पहले गायत्री मंत्र का उपदेश देता है तत्पश्चात् उसे शिक्षा का ज्ञान देना प्रारंभ करता है।

शिक्षण विधि - गुरुकुल की शिक्षण विधि श्रुति परंपरा पर आधारित है। अतः उपनयन संस्कार के बाद गुरु के समीप शुक्ल यजुर्वेद की माध्यंदिनीय शाखा के पठन-पाठन के लिए बैठते और गुरु जब नया पाठ पढ़ाते हैं, उसके तब-तक बाद नया पाठ नहीं पढ़ाते हैं जब-तक की छात्र पहले पढ़ाए गए पाठ को पूरी तरह से कण्ठस्थ और चिंतन-मनन न कर ले। जब छात्र प्रतिदिन के पाठ को अगले दिन सुनाते तब वे अपनी कमियों/त्रुटियों को दूर कर लेते थे। शुक्लयजुर्वेद की माध्यंदिनीय शाखा को पढ़कर कण्ठस्थ करने के लिए चार वर्ष लगे। इन चार वर्षों में वेदाध्ययन के साथ-साथ मन को भौतिक ज्ञान से हटाकर आध्यात्मिक जगत् में लगाना, आसुरी वृत्तियों पर नियंत्रण करना, आत्मिक उत्थान के लिए जप, तप एवं योग पर विशेष बल दिया गया। वेद के पठन-पाठन के समय छात्रों की वार्षिक परीक्षा भी होती जो कि 'महर्षि संदीपनि' उज्जैन द्वारा आयोजित की जाती। एक वर्ष तक छात्र वेद का जितना अध्ययन करता है उसकी मौखिक परीक्षा होती और छात्र के उत्तीर्ण होने पर छात्रवृत्ति प्रदान की जाती।

शिक्षण के दौरान छात्रों को साल में तीन अवकाश दिए जाते थे । पहला जून माह, दूसरा अष्टमी और प्रतिपदा तिथि व तीसरा दीपावली के शुभ पर्व पर अवकाश देने का नियम था। जून माह और दीपावली जैसे अवकाश पर छात्र अपने घर जाकर माता-पिता के साथ कुछ समय रहकर वापस गुरुकुल आ जाते और अष्टमी और प्रतिपदा के अवकाश पर वह अपने कार्य करते जिससे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध का विकास हो। यथा - शारीरिक विकास के लिए खेल, मानसिक के लिए योग ध्यान व शिक्षण-कौशल, ज्ञान-कौशल, ज्ञान-विज्ञान से संबंधित धर्म व संस्कृति के विद्वानों के व्याख्यानों को सुना जाना, **गुरुकुल में रामायण और धार्मिक सिनेमा के माध्यम से भी छात्रों का मनोरंजन कराया जाता और आत्मिक कार्यों में गौ सेवा, गुरुसेवा, भजन या मंदिरों में जाकर ईश्वर के चरणों में भजन करना आदि रहता है।** इस प्रकार गुरुकुल के शिक्षण विधि से मन में जो बदलाव आया वह यह था कि अपने दायित्वों को जानना, विद्वानों के द्वारा व्याख्यानों से **वैदिक तथा सनातन संस्कृति के प्रति आस्था उत्पन्न होना और इसे युगों-युगों तक जीवित रखना अपना कर्तव्य समझा।** कुछ शब्दों में कहा जाए तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना मेरे अन्तःमन में स्थापित हुई ।

गुरु एवं शिष्य के कर्तव्य – गुरु-शिष्य के संबंधों का प्रमुख आधार उनकी योग्यता तथा व्यवहार कुशलता पर रहता है। पूर्ण आकांक्षा एवं पूर्ण ज्ञान की खोज में रत करने वाला ही वास्तविक गुरु होता है। **आचार्य मनु ने कहा है-** "गुरु का अनिवार्य कर्तव्य है कि वह विद्यार्थी के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करे। वह केवल उन्हें अपने बालक की तरह ही न रखे, अपितु उन्हें पवित्र विद्या को पढ़ाए और कोई भी विद्या उनसे न छिपाए। " इस प्रकार गुरु हमारे वस्त्र, भोजन की व्यवस्था करते, बीमार पड़ने पर चिकित्सक के पास ले जाते। गुरु हमारी कार्य कुशलता और अध्ययन-अध्यापन से उत्साहित होकर हमारे प्रति अपनी संवेदनाएं प्रकट कर पुरस्कृत करते व हमारे मन की जिज्ञासाओं को अपने उत्तरों और उदाहरणों से अभिसिंचित करते।

इसी प्रकार छात्र का भी कर्तव्य था कि वह गुरुकुल में रहते हुए गुरु की सेवा अनिवार्य रूप से करे। यथा - चरण दबाना, दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराना; जैसे- स्नान के लिये जल की व्यवस्था करना, भोजन लाना, कपड़े धुलना, गुरु की आज्ञा का पालन करना आदि। छात्र का प्रमुख कर्त्तव्य यह भी रहता है कि चाहे गुरु कहे या न कहे प्रातः सायं अग्निहोत्र करना, निरंतर अध्ययन में दत्तचित्त रहना, सर का मुंडन कराकर शिखाधारी रहना, पवित्र स्थान में सायं-प्रातः संध्या करना, हमेशा सद्वृत्त धारण करने की चेष्टा करना आदि कर्तव्य रहता है। गुरु भी छात्रों से ऐसे कार्य नहीं लेते थे, जिनसे उनके अध्ययन-अध्यापन में बाधा पहुँचे। छात्र तथा गुरु के मध्य का संबंध किसी संस्था के माध्यम से नहीं, अपितु सीधे उन्हीं के बीच रहता है।

गुरुकुल जीवन का लाभ – गुरुकुल जीवन से मुझे जो सबसे ज्यादा लाभ मिला वह यह था कि मेरे भीतर इस संसार में ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा आदि का भेद-भाव किंचित मात्र का भी नहीं रहा। उसका कारण था कि गुरुकुल में आए मित्र-विद्यार्थी कोई गाँव या शहर के धनाड्य घर से था तो कोई आर्थिक रूप से कमजोर था। अतः गुरुकुल के सभी छात्रों की जीवन शैली एक-सी होने के कारण सब एक समान रहते और उनके कोमल हृदय पर एकता का भाव अंकित रहता। गुरुकुल की जीवनचर्या से मुझे आज के समय में कैसी भी परिस्थिति मेरे सामने आए, उसका समाधान और सामना करने में सक्षम हो गया हूँ । कम वस्तुओं में भी अपने कार्य को पूर्ण करना तथा बड़ो एवं गुरु के प्रति आदर व सम्मान का भाव बना रहता है। अतः मेरे संज्ञान में कुछ ऐसे मित्र हैं जो गुरुकुल से शिक्षा पूर्णकर बाहरी समाज में रहकर पी.सी.एस. जे. की परीक्षा को उत्तीर्ण कर समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान पर रहकर अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा का कार्य कर रहे हैं। इसी प्रकार कई छात्र विश्वविद्यालयों से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सहायक प्रोफेसर के पद पर, ज्योतिषाचार्य बनकर, कथावाचक बनकर उसके माध्यम से सनातन संस्कृति का प्रचार-प्रसार, व्यक्ति, ईश्वर और जगत के संबंधों को कथा के माध्यम से बोध कराना आदि जैसे कार्य कर रहें हैं ।

भारत के प्राचीन ऋषियों ने इस जगत् और जीवन की गुत्थियों को सुलझाना ही मानव-जीवन का महान कर्तव्य समझा था न कि आजकल के समान स्वार्थ से अंधे होकर एक-दूसरे पर पाशविक साम्राज्य स्थापित करके मानवता पर कुठाराघात करना। **अतः इस प्रकार की मानसिकता उत्पन्न न हो इसलिए** गुरुकुल शिक्षा की परंपरा निरंतर चलती आ रही है। इन गुरुकुलों में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि शक्तियों के विकास का श्री गणेश किया जाता है। **जिसके कारण छात्रों में व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण होता है तथा वे सनातन संस्कृति की रक्षा करना अपना दायित्व समझ पाते हैं।** गुरुकुल परंपरा में विद्यार्थी पूर्ण ब्रह्मचर्य, अनुशासन, रहन-सहन, खान-पान एवं वेश-भूषा संबंधी नियमों का पालन कर एक अनुशासित जीवन व्यतीत करते हैं। अतः इन नियमों और अनुशासनों से यह लाभ हुआ कि कम वस्तुओं में जीवन यापन कैसे किया जाए, विकट परिस्थिति में अपने आपको कैसे संभालकर अपने कर्तव्यों को समझा जाए ? गुरुकुल शिक्षण परंपरा के द्वारा यह सभी गुण हम लोगों के अंदर विद्यमान हो जाते हैं । यह कहा जा सकता है कि गुरुकुल का उद्देश्य "मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियों का सम्यक् विकास करके, सत्यार्थ को जानकर मनुष्य बनाना है, जिससे वह जीवन की पहेलियों को सुलझाने में समर्थ हो सके।" अतः आज मेरे माता-पिता को मेरे व्यवहार और कार्य कुशलता को देखकर गर्व होता है कि उस समय गुरुकुल जाने का निर्णय लेना उनका फलदायी रहा।